5. बालवग्गो (मूर्ख वर्ग)

60 दीघा जागरतो रत्ति, दीघं सन्तस्स योजनं।
दीघो बालानं संसारो, सद्धम्मं अविजानतं।।

शब्दार्थ – दीघा = दीर्घ, बड़ी, लम्बी। **जागरतो** = जागते रहने वालों के लिये। **रत्ति** = रात्रि, रात। **दीघं** = दीर्घ, बड़ा, लम्बा। **सन्तस्स** = श्रांत याने थके हुये के लिये। **योजनं** = योजन, मील, कोस, दूरी, यात्रा। **दीघो** = दीर्घ, बड़ा, लम्बा। **बालानं** = मूर्खों के लिये, अज्ञानियों के लिये। **संसारो** = संसार (भवचक्र, भवयात्रा, बारम्बार जन्म लेने की कामना)। **सद्धम्मं** = सद्धर्म को। **अविजानतं** = अ + विजानतं, नहीं + जानने वालों के लिये।

अनुवाद – जागते रहने वालों के लिये रात्रि लम्बी (महसूस) होती है, थके हुये के लिये यात्रा (योजन) लम्बी (लगती है, प्रतीत होती है, ज्ञात होती है) होती है। (उसी प्रकार) सद्धर्म को नहीं जानने वाले मूर्खों के लिये संसार (भवचक्र) लम्बा हो जाता (लगता) है।

टिप्पणी (गाथा क्रमांक 60)

संसार – स्थूल शरीर का आश्रय लेकर पुनः पुनः धरती पर जन्म लेना और मरना अर्थात तृष्णाजन्य आवागमन ही संसार है, जगतजाल है।

टिप्पणी (गाथा क्रमांक 60)

अलबर्ट आइन्सटीन का सापेक्षतावाद – गाथा क्रमांक 60 के अनुसार जो बात बुद्ध ने आज से 2500 वर्षों पूर्व बताया था, वही बात आधुनिक युग में महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन ने अपने सापेक्षतावाद के सिद्धांत में कहा।

समय ओर दूरी तो मन की प्रतीति हैं। आप जितने अधिक दुख में हैं, समय उतना ही बड़ा लगने लगता है, उसी प्रकार छोटी दूरी भी बहुत लम्बी भासित होने लगती है। और यदि आप अत्यन्त सुख में हैं, तो वही समय छोटा महसूस होता है, कैसे बीत गया पता ही नहीं चलता। उसी प्रकार बहुत दूर तक भी जाना पड़े तो भी सुख और प्रसन्नता के कारण वह दूरी भी छोटी प्रतीत होती है।

समय और दूरी दोनों का आभास परिस्थिति के अनुसार ही होता है। हमारा मन वैसा ही सोचता है जैसी परिस्थिति है। उदाहरण के लिये यदि कोई अप्रिय व्यक्ति (या शत्रु) घर पर आ जाये और थोड़ी देर भी बैठ जाये

तो ऐसा लगता है कि वह जल्दी ही भाग जाये, समय भारी और लम्बा महसूस होता है। और यदि कोई प्रिय व्यक्ति (मित्र या सगा–सम्बन्धी) घर पर आ जाये तो समय ऐसे बीत जाता है कि पता ही नहीं चलता। प्रिय व्यक्ति घर में घंटो बैठने पर भी ऐसा लगता है कि अभी अभी तो आया है, समय का भान ही नहीं रहता।

उसी तरह यात्रा का लम्बा होना या छोटा होना, कोस की दूरी भी मन की सोच पर निर्भर है। कोस तो उतना ही है। यदि प्रिय से मिलने जाना है तो दूरी भी छोटी लगती है और यदि किसी अप्रिय कार्य से जाना है तो कम दूरी भी लम्बी लगने लगती है। प्रिय के साथ कोस मिट जाते हैं, समय शुन्य हो जाता है।

हम रात में गहरी निंद में सो जाते हैं, सुबह जागते हैं, समय कैसे बीत गया, पता ही नहीं चलता। सपना देखते हैं कि हमारी शादी हो गई, बच्चे बड़े हो गये, हम मर गये। सम्पूर्ण जीवन का इतना लम्बा समय हम क्षण भर में देख लेते हैं। उसी प्रकार समाधि में भी चित्त सो जाता है, समय का पता ही नहीं रहता।

अलबर्ट आइन्सटीन अपने सापेक्षता के सिद्धांत (Theory or Relativity) में कहते हैं – संसार में हर चीज सापेक्ष (Relative) है, तुलनात्मक है। कोई भी चीज पक्की, निरपेक्ष (Obsolute) नहीं हैं। न समय छोटा बड़ा होता है, न दूरी छोटी बड़ी होती है और न कोई वस्तु छोटी बड़ी होती है। न प्रकाश (उजाला) और न अंधेरा कम ज्यादा होता है। न गति (वेग) तेज या धीमी होती है और न कोई भी माप इस संसार में छोटा बडा होता है। ये सभी तुलनात्मक हैं। हमारे मन से सम्बन्धित हैं। हमारी सोच के आधार पर दो या दो से अधिक बातों, वस्तुओं, मापों की तुलना करने पर ही हम यह जान पाते हैं कि कौन छोटा और कौन बड़ा है।

हर वस्तु तीन आयामों में मापी जाती है – लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई (गहराई)। आइन्सटीन ने कहा, चार आयाम हैं, और चौथा आयाम है, समय। पहले तीन आयाम भौतिक हैं परंतु चौथे आयाम का बोध चेतना (मन) का हिस्सा है। किसी चीज का अस्तित्व उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई (गहराई) से ही नहीं है बल्कि उसके साथ यह भी सुनिश्चित करना होता है कि, कब ?, किस समय ?

उदाहरण स्वरूप– एक तारा हमसे करोड़ो प्रकाश वर्ष दूर है। मान लो लाखो प्रकाश वर्ष पूर्व वह तारा ठंडा होकर अपना प्रकाश खो बैठा। तारा खत्म होकर ब्लेक होल बन गया लाखो प्रकाश वर्ष पूर्व। परंतु वह तारा

आज भी हमें वैसा ही दिखाई पड़ता है जैसा कि वह लाखो प्रकाश वर्ष पूर्व चमक रहा था जबकि वर्तमान समय में वह मर चुका है। यही समय की महिमा है। उस तारे से हम तक पहुँचने के लिये प्रकाश को करोड़ो वर्ष लग गये। याने जो कल था वह आज नहीं है, परंतु समय के कारण उसका अस्तित्व आज भी चेतना में हमें लगता है।

सापेक्षता को समझने के लिये एक उदाहरण और है– हमारा सौर मंडल। यहाँ सभी ग्रह अपने अपने पथ पर चलते हुये सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं और सूर्य स्थिर है। परंतु ध्यान से समझे तो सूर्य भी स्थिर नहीं है। हमारा यह सूर्य अपने सौर परिवार सहित (सूर्य और उसकी परिक्रमा कर रहे सभी ग्रहों के समूह को एक ही पिंड समझें) हमारी आकाश–गंगा में अन्य तारों के इर्द गिर्द किसी नियम के अनुसार चल रहा है। उसी प्रकार हमारी पूरी आकाश–गंगा के सारे ग्रह और तारों को एक पिंड मान लें तो यह समूचि आकाश–गंगा (नक्षत्र मंडल) अन्य आकाश गंगाओं की तुलना में किसी नियम के अनुसार हमारे इस ब्रह्मांड में इधर उधर चल रहा है। क्या पता कि हमारी कल्पना के परे हमारा यह ब्रह्मांड भी अन्य ब्रह्मांडो की तुलना में किसी नियम के अनुसार किसी महा–ब्रह्मांड में इधर उधर चल रहा हो।

इसका मतलब यह हुआ कि हमारे इस ब्रह्मांड में अथवा कल्पनातीत किसी महा–ब्रह्मांड में कोई भी चीज निरपेक्ष (Obsolute) नहीं है, हर चीज सापेक्ष (Relative) है, तुलनात्मक है। सभी चीजों की स्थिति समय समय पर परिवर्तित होती रहती है।

इस जगत में सभी चीजें परिवर्तनशील हैं। जो कल था वह आज नहीं है और जो आज है वह भविष्य मे नहीं रहेगा। इस जगत की लम्बी धारा में समय ही ऐसी चीज है जो नहीं बदलता।

(देखिये **टिप्पणी** गाथा क्रमांक : 277, 278 और 279 – **प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धांत याने हेतुवाद, कार्य–कारण का नियम**)

61 चरं चे नाधिगच्छेय्य, सेय्यं सदिसमत्तनो।
एकचरियं दळहं कयिरा, नत्थि बाले सहायता।।

शब्दार्थ – चरं = विचरण करते हुये। **चे** = यदि। **नाधिगच्छेय्य** = न + अधिगच्छेय्य, नहीं + साथ जाने वाला, साथ नहीं चलने वाला। **सेय्यं** = श्रेष्ठ। **सदिसमत्तनो** = सदिसं + अत्तनो, समान दिखने वाला + अपने, अपने समान दिखने वाला, अपने जैसे विचार, मत वाला। **एकचरियं** =एक

+ चरियं, अकेले विचरण करें, अकेला चलें। **दळहं** = दृढ़ता पूर्वक। **कयिरा** = करों। **नत्थि** = नहीं होती। **बाले** = मूर्ख की। **सहायता** = संग, संगति, साथ।

अनुवाद –यदि विचरण करते हुये (कोई यात्री) अपने से श्रेष्ठ या अपने जैसे विचार रखने वाला न मिले तो दृढ़ता पूर्वक अकेले ही विचरण करें, मूर्ख का साथ अच्छा नहीं होता।

62 पुत्ता मत्थि धनं मत्थि, इति बालो विहञ्ञति।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि, कुतो पुत्ता कुतो धनं।।

शब्दार्थ – पुत्ता = पुत्र (बहु वचन)। **मत्थि** = मे + अस्ति, मेरे हैं। **धनं** = धन, सम्पत्ति। **इति** = ऐसा, इस तरह। **बालो** = मूर्ख। **विहञ्ञति** = नष्ट होता है, विनाश को प्राप्त होता है, दुखी, परेशान होता है। **अत्ता** = आत्मा, स्वयं । **हि** = ही, वास्तव में। **अत्तनो** = अपना, स्वयं का। **नत्थि** = न + अस्ति, नहीं है। **कुतो** = कहॉ, कैसे ?

अनुवाद – "पुत्र मेरे हैं, धन मेरा हैं", ऐसा विचार कर (सोच कर) मूर्ख (अज्ञानी मनुष्य) दुखी–परेशान होता है। (अरे!) जब वह स्वयं ही अपना नहीं है, तो पुत्र कहॉ का और धन कहॉ का ?

टिप्पणी (गाथा क्रमांक 62)

"पुत्र मेरे हैं" – हम एक ही भ्रांति पाले रहते हैं कि, हमे दूसरों से सुख मिल सकता है; पति से, पत्नी से, माता–पिता से, पुत्र–पुत्रियों से, सगे–सम्बन्धियों से, यार–दोस्तों से। पर याद रखना, जब दूसरा तुम्हारे पास आया है, तो वह अपने सुख की तलाश में आया है और जब तुम दूसरों के पास जाते हो तो तुम भी अपने ही सुख की प्राप्ति के लिये जाते हो।

पत्नी तुम्हारे पास है, इसलिये नहीं कि वह तुम्हे सुख दे और पत्नी के पास तुम हो तो इसलिये नहीं कि तुम उसे सुख दो। कौन पत्नी को पत्नी के लिये प्रेम करता है ? कौन सी पत्नी अपने पति के के लिये प्रेम करती है ? वह भी सिर्फ अपने लिये प्रेम करती है। सुख की आकांक्षा सिर्फ अपने लिये है।

हम सोचते हैं कि दूसरों से सुख मिलेगा। लेकिन हम दूसरों की आवश्यकता की पूर्ती नहीं कर पाये तो हम उसे दुख ही देते हैं और उसी

तरह दूसरा भी हमारी इच्छाओं की पूर्ती न कर सके तो वह भी हमें दुख ही देता है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह अपने ही अन्दर सुख खोजे।

" धन मेरा हैं" – हमारे अन्दर दूसरा भ्रम यह भी रहता हैं कि, हमे धन–सम्पत्ति, पद–प्रतिष्ठा से सुख मिल सकता है; पर यह सम्पदा भी हमें दुख ही देती है, जब अपने ही उसको हड़पने के लिये नाना प्रकार के छल–कपट शुरू कर देते हैं और परिवार में कलह पैदा हो जाती है। नाते–रिस्तेदार, मित्र मंडली और अन्य लोग भी तभी तक आपके आसपास मंडराते रहते हैं जब तक आपके पास धन– सम्पत्ति ओर पद–प्रतिष्ठा है और जैसे ही ये सब आपके पास नहीं रहा, सभी लोगं आपको अनदेखा करने लगते हैं।

कौन किसी को याद रखता है ? इधर मरे नहीं कि लोग अर्थी तैयार करने लगते हैं। घर के लोग रोने–धोने में लगे रहते हैं और पास पड़ौसी, जान पहिचान वाले, मित्रगण, नाते रिश्तेदार सभी अर्थी का सामान इकट्ठा करने लग जाते हैं। सभी को जल्दी पड़ी रहती है कि विदा करो। मरघट ले जाने को उत्सुक हो जाते हैं। मरे नहीं कि भुलाने को तैयार हो जाते हैं। चार दिन बाद कहानी भी नहीं रह जाती। कौन याद करता है किसी को ? किसको पड़ी है ?

रेत पर खिची गई लकीर है यह जीवन, जो हवा के एक ही झोके से मिट जाती है। मरने के बाद याद रह जाते हैं सिर्फ मनुष्य द्वारा किये गये अच्छे कर्म जो उसने दूसरों के भले के लिये किये हैं।

63 यो बालो मञ्ञति बाल्यं, पण्डितो वा पि तेन सो।
बालो च पण्डितमानी, स वे बालो' ति वुच्चति।।

शब्दार्थ – यो = जो। **बालो** = मूर्ख, अज्ञानी। **मञ्ञति** = मानता है। **बाल्यं** = मूर्खता, अज्ञानता। **पण्डितो** = पण्डित, विद्वान, ज्ञानी, बुद्धिमान। **वा पि** = या भी, तो भी। **तेन** = इससे, उसी कारण से। **सो** = वह। **च** = और। **पण्डितमानी** = पंडित्याभिमानी, अपने आपको पंडित मानने वाला, ज्ञानी समझने वाला। **स** = वह। **वे** = ही, (निश्चित रूप में, वास्तव में, यथार्थ में, सचमुच में, असली)। **बालो' ति** = बाल + इति, मूर्ख + ऐसा। **वुच्चति** = कहा जाता है।

अनुवाद – (यदि कोई) जो मूर्ख अपनी मूर्खता को मानता है (अपने आपको अज्ञानी समझता है) तो भी इससे (उसी कारण से) वह ज्ञानी (उतने अंश

में ज्ञानी) है। और (यदि) वह मूर्ख अपने आपको पंडित मानता है तो वह ही (वास्तव में) असली मूर्ख है, ऐसा कहा जाता है।

64 यावजीवं पि चे बालो, पण्डितं पयिरूपासति।
न सो धम्मं विजानति, दब्बी सूपरसं यथा।।

शब्दार्थ – यावजीवं = याव + जीवं, तक + जीवन, जीवन पर्यन्त, जीवन तक, जीवन भर, सारा जीवन। **पि** = भी। **चे** = यदि। **पण्डितं** = पंडित के। **पयिरूपासति** = पयिर + उपासति, के समीप में रहे, के साथ में रहे, की संगति में रहे। **न** = नहीं। **सो** = वह। **धम्मं** = धर्म को। **विजानति** = जान पाता है, समझ पाता है। **दब्बी** = कड़छी, कलछी, करछुली। **सूपरसं** = सूप + रसं, सूप का स्वाद, दाल का रस। **यथा** = जैसे, जिस प्रकार।

अनुवाद – यदि मूर्ख (मनुष्य) जीवन भर भी पंडित के साथ रहे, तो भी वह धर्म (ज्ञान) नहीं जान पाता, जिस प्रकार कलछी सूप के स्वाद को (करछुली सूप में डूबी रहकर भी यह नहीं जान पाती कि सूप का स्वाद कैसा है)।

65 मुहुत्तमपि चे विञ्ञू, पण्डितं पयिरूपासति।
खिप्पं धम्मं विजानति, जिव्हा सूपरसं यथा।।

शब्दार्थ – मुहुत्तमपि = मुहुत्तम + पि, मुहुर्त भर भी, क्षण मात्र भी। **विञ्ञू** = विज्ञ, ज्ञानी। **खिप्पं** =क्षिप्रं, शीघ्र ही। **जिव्हा** = जीभ।

अनुवाद – यदि विज्ञ (विचारवान मनुष्य) क्षण भर भी पंडित के साथ रहे, तो शीघ्र ही वह धर्म (ज्ञान) को जान लेता है, जिस प्रकार जीभ सूप के स्वाद को (सूप जैसे ही जीभ में लगता है, तत्काल समझ में आ जाता है कि सूप का स्वाद कैसा है)।

66 चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं, यं होति कटुकप्फलं।।

शब्दार्थ – चरन्ति = विचरण करते हैं, घूमते रहते हैं। **दुम्मेधा** = दुः + मेधा, दुर्मति, दुर्बुद्धि। **अमित्तेनेव** = अमित्तेन + व, अमित्र + के समान, शत्रु के समान, वैरी बने हुये। **अत्तना** = अपने आपक, स्वयं के। **करोन्ता** = करते हुये, करते रहते हैं। **पापकं कम्मं** = पापकर्म। **यं** = जो कि। **होति** = होता है। **कटुकप्फलं** = कटुक + फलं, कड़ुवा फल, कड़ुवा परिणाम।

अनुवाद – दुर्बुद्धि वाले मूर्ख (मनुष्य) अपने आपके (स्वयं के वैरी बने हुये) अमित्र के समान घूमते रहते हैं (और) पापकर्म करते रहते हैं, जो कि कडुवा फल देने वाले होते है।

67 न तं कम्मं कतं साधु, यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं, विपाकं पटिसेवति।।

शब्दार्थ – न = नहीं। **तं** = उस। **कम्मं** = काम को। **कतं** = करना। **साधु** = अच्छा। **यं** = जिसे। **कत्वा** = करके। **अनुतप्पति** = अनुतप्त होता है, संताप करता है, दुखी होता है, पश्चाताप करता है, पछताता है। **यस्स** = जिसके। **अस्सुमुखो** = अस्सु + मुखो, अश्रु + मुख, आंसु भरा मुँह। **रोदं** = रोते हुये। **विपाकं** = फल, परिणाम। **पटिसेवति** = सेवन करता है, भोगता है।

अनुवाद – उस काम को करना अच्छा नहीं, जिसे करके (मनुष्य) अनुतप्त होता है (पछताता है), (और) जिसके परिणाम को आंसु भरे मुंह से रोते हुये भोगता है।

68 तं च कम्मं कतं साधु, यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो, विपाकं पटिसेवति।।

शब्दार्थ – नानुतप्पति = न + अनुतप्पति, अनुतप्त नहीं होता है, दुखी नहीं होता है, पश्चाताप नहीं करता है, पछताता नहीं है। **पतीतो** = विश्वस्नीय रूप से, विश्वस्त रूप से, विश्वास पूर्वक, आश्वस्त हो कर। **सुमनो** = सु + मनो, प्रसन्न मन से।

अनुवाद – और उस काम को करना अच्छा है, जिसे करके (मनुष्य) अनुतप्त नहीं होता (पछताता नहीं), (और) जिसके परिणाम को आश्वस्त हो कर प्रसन्न मन से भोगता है।

टिप्पणी (गाथा क्रमांकः 67 और 68)

साधु–साधु–साधु :– तथागत बुद्ध ने 'साधु' शब्द का जो उपयोग किया है उसका एक मूल्य है। 'साधु' का अर्थ 'शुभ' नही है ।

जब हम कहते है 'शुभ', तो जोर 'कर्म' पर जाता है। शुभ कर्म, शुभकामना, शुभमुहुर्त, शुभागमन, शुभाशिष इत्यादि इत्यादि। और जब हम

कहते है 'साधु', तो जोर 'होने' पर जाता है। जैसे कोई अच्छी घटना घटित हो गई, तब हम 'साधुवाद' कहते है। जब कोई अच्छी भली बात हमारे मन को अत्याधिक प्रफुल्लित कर दे तब हम कहते है, ओह! कितना अच्छा हुआ,, ओह! चित्त कितना आल्हादित हो गया, ओह! यह बात कितनी मनभावन है। हम उस बात के लिये साधुवाद करने लगते है, साधु–साधु–साधु अर्थात बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

असाधु रह कर भी कोई 'शुभ कर्म' कर सकते है। चोर भी दान देता है, डाकू भी डकैती से लुटा हुआ रूपया–पैसा, धन–धान्य इत्यादि गरीब गांव वालो मे बांट कर मदद करता है। हत्यारे, जुआरी, बदमाश गुंडे भी मंदिरो मे दान देते है, मंदिर बनवाते है, पूजा–पाठ, हवन, यज्ञ इत्यादि करवाते है। इस तरह कुछ ना कुछ शुभ कर्म करने की कोशिश करते रहते है, ताकि पाप कट जाये।

बुद्ध कहते है 'साधु', शुभ नही। तुम मन से अच्छे रहो, 'साधु' रहो।

पापी, बेईमान, धोखेबाज, मिलावटखोर और अन्य सभी बुरे काम करने वाले लोग कितने भी शुभ कर्म करते रहे परन्तु वे कभी साधु नही हो सकते, मन से पवित्र नही हो सकते। संत कबीर भी अपनी अनेक साखीयो मे भले मानसो, भद्रजनो को संम्बोधित करते हुए कहते है :– 'कहत कबीर सुनो भाई साधो, ...'

बुद्ध–वंदना में त्रिशरण, पंचशील ग्रहण करने के बाद अंत में हम तीन बार "साधु, साधु, साधु" कहकर साधुवाद करतें हुये अपने मन की भावनायें व्यक्त करते है; बुद्ध के धम्म के प्रति अपने चित्त में उठे भाव को ही प्रकट करते हैं कि ओह! कितना अच्छा है, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

"साधु साधु मैं जप करूं, मन पवित्र हो जाय।
मैं स्वयं साधु रहूँ, जग साधु हो जाय, ओ बुद्धा, जग साधु हो जाय।।"

'साधु' बनना या 'साधु' दिखना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि महत्वपूर्ण है 'साधु' होना, 'साधु' रहना।

(देखिये गाथा क्रमांक : 163, 206, 223, 262, 263, 360, 361 – **साधु**)

69 मधुवा मञ्ञति बालो, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं, अथ बालो दुक्खं निगच्छति।।

शब्दार्थ – मधुवा = मधु + वा, मधु + के समान, शहद के समान। **मञ्ञति** = मानता है, समझता है। **याव** = जब तक। **न पच्चति** = नहीं पक जाता है, परिपक्व नहीं हो जाता है, फल नहीं देता है। **यदा** = जब। **अथ** = तब, ततपश्चात, उसके बाद। **दुक्खं** =दुख को। **निगच्छति** = प्राप्त होता है।

अनुवाद – (तब तक) मूर्ख मनुष्य (पाप को) शहद के समान (मीठा) मानता है, जब तक (कि) पाप पक नहीं जाता है (फल नहीं देता है)। और जब पाप पक जाता है (फल देने लगता है), तब मूर्ख मनुष्य दुख को प्राप्त होता है।

70 मासे मासे कुसग्गेन, बालो भुञ्जेथ भोजनं।
न सो सङ्खातधम्मानं, कलं अग्घति सोळसिं।।

शब्दार्थ – मासे मासे = महिनों महिनों भर, महिनों महिनों तक, हर महिने, प्रति माह। **कुसग्गेन** = कुस + अग्गेन, कुश के अग्र भाग से, कुश की नोंक से। **भुञ्जेथ** = भोजन करे, खाये। **भोजनं** = भोजन को। **न** = नहीं। **सो** = वह। **सङ्खातधम्मानं** = संख्यात धर्मानां, धर्म का जानकार, धर्म का ज्ञाता, ज्ञात धर्म, सतुलित धर्म। **कलं** = कला, हिस्सा, भाग, अंश। **अग्घति** = बराबरी करता है, समानता प्राप्त करता है, मूल्य के बराबर होता है, अंश के समान होता है। **सोळसिं** = सोलहवॉ।

अनुवाद – (यदि) मूर्ख मनुष्य महिनों महिनों तक (भी) कुश की नोंक से (उठा कर) भोजन करे, (तो भी) वह धर्म का जानकारों (ज्ञात धर्मों) के सोलहवे भाग की बराबरी नहीं कर सकता।

71 न हि पापं कतं कम्मं, सज्जुखीरं व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति, भस्मच्छन्नो व पावको।।

शब्दार्थ – न = नहीं। **हि** = ही, वास्तव में। **पापं** = पाप **कतं** = किया गया। **कम्मं** = कर्म। **सज्जुखीरं** = सज्जु + खीरं, धरोष्ण दूध, ताजा दूध, गाय के थनों से तत्काल निकाला गया दूध। **व** = के समान। **मुच्चति** = (दही के रूप में) परिणमित होता है, जम जाता है, शिघ्र विकार लाता है। **डहन्तं** = दहंतं, जलता हुआ। **बालमन्वेति** = बालम + अन्वेति, मूर्ख का अनुसरण करता है, मूर्ख का पीछा करता है। **भस्मच्छन्नो** = भस्म + च्छन्नो, भस्म से आच्छादित, भस्म से छाये हुये, राख से ढके हुये। **व** = के समान। **पावको** = अग्नि, आग।

अनुवाद – किया गया पाप कर्म ताजे दूध (गाय के थनों से तत्काल निकाला गया दूध दही के रूप में तुरंत ही नहीं जम पाता) के समान वास्तव में शीघ्र विकार नहीं लाता है। (परंतु वह पाप कर्म) भस्म से ढकी हुई अग्नि के समान (उसको) जलता हुआ मूर्ख का पीछा करता है।

72 यावदेव अनत्थाय, ञत्तं बालस्स जायति।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं, मुद्धमस्स विपातयं।

शब्दार्थ – यावदेव = यावत + एव, जितना भी। **अनत्थाय** = अनर्थाय, अनर्थ के लिये। **ञत्तं** = ज्ञत्व, ज्ञात कर लिया है, जान लिया है। **बालस्स** = मूर्ख का। **जायति** = होता है, जन्म लेता है, पैदा होता है, उत्पन्न होता है। **हन्ति** = हत्या कर देता है, छिन्न भिन्न कर देता है, नष्ट कर देता है। **सुक्कंसं** = सुक्कं + अंसं, शुक्ल + अंश, शुक्लांश, उजला अंश, शुभ अंश, प्रसन्नता। **मुद्धमस्स** = मुर्धा (सिर) का, प्रज्ञा का। **विपातयं** = गिराता हुआ, विध्वस्त करता हुआ, विनाश करता हुआ, नष्ट करता हुआ।

अनुवाद – मुर्ख मनुष्य का जितना भी ज्ञान होता है, (वह सब उसके) अनर्थ के लिये होता है। (वह ज्ञान उसकी) मुर्धा (सिर) को गिराता हुआ मूर्ख के शुक्ल अंश (शुभ कर्मों) की हत्या कर देता है।

73 असतं भावनमिच्छेय्य, पुरेक्खारञ्च भिक्खुसु।
आवासेसु च इस्सरियं, पूजा परकुलेसु च।।

शब्दार्थ – असतं = असत, जो सत्य नहीं है या, अविद्यमान, जिसका अस्तित्व नहीं है, असम्भावित, झूठी। **भावनमिच्छेय्य** = भावनं + इच्छेय्य, भावना इच्छा करे, चाह करे, अभिलाषा करे। **पुरेक्खारञ्च** = पुरेक्खारं +च, पुरूष्कार, सम्मान, आदर सत्कार + और। **भिक्खुसु** = भिक्षुओं (के बीच) में। **आवासेसु** = निवास स्थानों में (मठों में, विहारों में)। **इस्सरियं** = ऐश्वर्य, स्वामीत्व। **पूजा** = पूजित होना। **परकुलेसु** = पर कुलों में, दूसरे कुलों में (मुर्ख मनुष्य साधरण गृहस्थ होता है, जबकि प्रव्रज्जित भिक्षु ज्ञानी होते हैं, इसीलिये भिक्षुओं के कुल को परकुल कहा गया है)।

अनुवाद – (जो मुर्ख मनुष्य) असत (असत्य, असम्भावित, गलत बातों) की इच्छा भावना करे और भिक्षुओं (के बीच) में (स्वयं को बड़ा मानते हुये) आदर सत्कार पाने की इच्छा भावना करे, (भिक्षुओं के) निवास स्थानों में

(मठों में, विहारों में) ऐश्वर्य (स्वामीत्व) की चाह करे और परकुलों में पूजित होने की अभिलाषा करे।

74 ममेव कतमञ्ञन्तु, गिही पब्बजिता उभो।
ममेवातिवसा अस्सु, किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि।
इति बालस्स सङ्कप्पो, इच्छा मानो च वड्ढति।।

शब्दार्थ – ममेव = मम +एव, मेरा ही। **कतमञ्ञन्तु** = कत + मञ्ञन्तु, किया हुआ मानें, किया गया मानें। **गिही** = गृहस्थ। **पब्बजिता** = प्रव्रज्जित, श्रमण, सन्यासी। **उभो** = दोनों। **ममेवातिवसा** = मम + एव + अतिवसा, मेरे ही वश में रहें, मेरे ही अधिनस्थ रहें, मुझ पर ही निर्भर रहें। **अस्सु** = होवें, रहें। **किच्चाकिच्चेसु** = किच्च + अकिच्चेसु, किये गये कार्यों में और न किये गये कार्यों में, कृत्यों और अकृत्यों में। **किस्मिचि** = किसी भी। **इति** = इस तरह। **बालस्स** = मूर्ख का। **सङ्कप्पो** = संकल्प। **इच्छा** =इच्छायें। **मानो** = मान, अभिमान, अहंकार। **वड्ढति** = बढ़ता है।

अनुवाद – गृहस्थ और प्रव्रज्जित दोनों मेरा ही किया हुआ मानें, किन्ही भी किये गये कार्यों और न किये गये कार्यों में मेरे ही अधिनस्थ रहें, मूर्ख मनुष्य के इस तरह के संकल्पों से (उसकी) इच्छायें और अहंकार बढ़ता है।

75 अञ्ञा हि लाभूपनिसा, अञ्ञा निब्बानगामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य, विवेकमनुब्रुहये।।

शब्दार्थ – अञ्ञा = अन्य, दूसरे। **हि** = ही, वास्तव में। **लाभूपनिसा** = लाभ + उपनिसा, लाभ की सीढ़ी, लाभों को पाने का मार्ग, रास्ता, राह। **निब्बानगामिनी** = निब्बान + गामिनी, निर्वाण की ओर जाने वाला। **एवमेतं** = एवम + एतं, इसप्रकार + इसे। **अभिञ्ञाय** = अभिज्ञाय, अभिज्ञान कर, जान कर। **भिक्खु** = भिक्षु। **बुद्धस्स** = बुद्ध का। **सावको** = श्रावक। **सक्कारं** = सत्कार। **नाभिनन्देय्य** = न + अभिनन्देय्य, अभिनन्दन न करता हुआ। **विवेकमनुब्रुहये** = विवेकं + अनुब्रुहये, विवेक को आगे बढ़ायें, विवेक की वृद्धि करें, विवेक को सुदृढ करें।

अनुवाद – (सांसारिक) लाभों को पाने का मार्ग दूसरा ही है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग दूसरा। इस प्रकार इसे जान कर बुद्ध का

श्रावक भिक्षु (लौकिक) सत्कार का अभिनन्दन (चाह) न करते हुये विवेक को सुदृढ करें।

टिप्पणी (गाथा क्रमांक 75)

विवेक – विवेक का सामान्य अर्थ हैं सत–असत का प्रभेद ज्ञान, अलग–अलग करने का ज्ञान, पृथक्करण की समझ। अच्छे–बुरे, शुभ–अशुभ, करणीय–अकरणीय कर्म इत्यादि को अलग अलग कर तदनुसार निर्णय लेने की समझ। नीर–क्षीर विवेक का मतलब है दूध का दूध और पानी का पानी अलग कर देने की बुद्धि।

बौद्ध शास्त्रों के अनुसार लौकिक आसक्तियों में लगे रहने का मार्ग और मोक्ष–मार्ग दोनों में प्रभेद करने की शक्ति ही विवेक है। सांसारिक जगत से अलग होना कायविवेक है, बुरी भावनाओं से अलग होना चित्तविवेक है और सर्वोच्च पार्थक्य है उपधिविवेक अर्थात निर्वाण।